संगीत की विभिन्न शैलियाँ

छन्द प्रबन्ध, जातिगान- देशकाल की परिस्थित में समय-समय पर आये अनेक धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक परिवर्तनों से संगीत-कला भी अछूती नहीं रह सकी, जिसके कारण इस कला में भी अनेकों पखिर्तन हुए, जिसके फलस्वरूप अनेक प्राचीन मान्यताएँ टूटी, नवीन शैलियों का जन्म हुआ। प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी तक देश में पूर्णरूपेण परिपक्व एवं प्रचलित छन्द-प्रबन्ध, स्तुति, जातिगान शैली का ही प्रचार था, जो संस्कृत, तमिल, तेलगु आदि भाषाओं में थे। दाक्षिणात्य संगीत विद्वानों के अतिरिक्त छन्द-प्रबन्ध गान के अद्वितीय महान् विद्वान् गायक के रूप में शीर्षस्थ नाम नामक गोपाल का आता है जो देवगिरिनरेश रामदेव यादव के दरबारी कलावन्त थे। इनका उल्लेख चतुर कल्लिनाथ के ग्रन्थ 'रत्नाकर' के तालाध्याय की टीका में तालव्याख्या के अन्तर्गत विशेष सम्मानित संगीत विद्वान् के रूप में आया है।

'कुड़ाकुतालस्त गोपालनायकेतन.....प्रयुक्त।।'

सन् १२९६ ई. में, अलाउद्दीन खिलजी के दरबार के विशिष्ट कवि, ईरानी एवं भारतीय संगीत के ज्ञाता अमीर खुसरो ने चोरी से छिपकर गोपाल नामक की छन्द-प्रबन्ध-गान की विलक्षण गायकी को सुना, और उसे आतासात् कर तथआ उससे प्रभावित होकर अपनी अद्भुत् संगीत-प्रतिभा से उसी आधार पर अरबी, फारसी भाषा के माध्यम से कौल, कलबानह, गुलनक्श, रूबाइयाँ, तराना, कव्वाली आदि अनेक गायन शैलियों को जन्म देकर भारतीय संगीत में एक नवीन अध्याय का सृजन किया।

ख्याल एवं अमीर खुसरो- डॉ. मलिक मुहम्मद कृत 'अमीर खुसरो' में 'अमीर खुसरो की फारसी साहित्य सेवा' निबंध के लेखक डॉ. एन.एस गोरे के अनुसार अमीर खुसरो का जन्म हिजरी सन् ६५१ मुताबिक सन् ११९३ ई. में एटा जिले के पटियाली ग्राम में हुआ था। आपके पूर्वज खुरासान से भारत आये थे। आपके पिता का नाम अमीर मुहम्मद सैफुद्दीन था। अमीर खुसरो तुर्क पिता एवं भारतीय माँ की द्वितीय सन्तान थे। आपका बचपन का नाम अबुल हसन था और इन्हें अपने भारतीय होने का महान् गर्व था। अपने ७२ वर्ष के जीवनकाल में आपने ९० से ऊपर रचनाएँ की जिनमें मात्र २२ ही प्राप्य हैं। संगीत क्षेत्र में आपने 'रंग' उपनाम से रचनाएँ की। आपका विलक्षण संगीत प्रतिभा से प्रसन्न होकर आपके आध्यात्मिक गुरू निजामुद्दीन औलिया ने इनको 'मिफताहुस-समाँ' (संगीत की कुंजी) की उपाधि से अलंकृत किया। अमीर खुसरो अनेक गायन शैलियों तथा राग रागिनियों, सेहतार (तीन तार), ढोलक आदि वाद्यों के आविष्कारक तथा दो संस्कृतियों के संगम थे। आपने भारतीय एवं फारसी रागों के आधार पर यमन, जीलफ साजगिरी, उषआक, सरपरदा, बखरेज, मुजीव या मजीर सनम या गनम, निगार, बसीत, शहाना आदि रागों का ईजाद किया। अमीर खुसरो को भारतीया एवं फारसी संगीत पर विशेष अधिकार प्राप्त था, जिसके फलस्वरूप अलाउद्दीन खिलजी के शासन-काल में दक्षिण के विख्यात विद्वान् संगीतज्ञ गोपाल नायक जब अपने १२०० शिष्यों के साथ दिल्ली आये तो अमीर खुसरो ने बादशाह से विशेष आग्रह का आमंत्रण भिजवाया। गोपाल नामक का संगीत प्रदर्शन लगातार छः दिनों तक बराबर गोपाल नामक का संगीत सुनता एवं आत्मसात् करता रहा। अन्त में समापन के अवसर पर अमीर खुसरो स्वयं उपस्थित हुआ, जिसे देखते ही नायक के रागों को दुहराते हुए उनसे मिलते फारसी रागों को सुनाकर उसने अलाउद्दीन के दरबार में गोपाल नायक को पराजित सा भरे कर लिया, किन्तु हृदय से वह गोपाल नायक की विलक्षण संगीत प्रतिभा का प्रशंसक बना, जिसके फलस्वरूप बाद में गोपाल नायक को दिल्ली दरबार में पूर्ण आदर एवं सम्मान मिला।

अमीर खुसरो द्वारा आविष्कृत 'कौल'- फारसी-अरबी शब्दों द्वारा निर्मित बन्दिश थी, जिसकी गायन शैली भारतीय गीतों की तरह थी। तराना-फारसी भाषा के शेर जिन्हें एकताल में प्रायः गाने का प्रचलन था। कव्वाली-परशियन तथा भारतीय गीतों की तरह थी। तराना-फारसी भाषा के शेर, जिन्हें एकताल में प्रायः गाने का प्रचलन था। कव्वाली-परशियन तथा भारतीय शैली मिश्रित गायन पद्धति थी और इसके अतिरिक्त ख्याल गायन शैली के प्रथम प्रयासकर्ता के रूप में भी अमीर खुसरो

© Copyright IGNCA, Sunil Jha
All rights reserved. No part of this may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

का नाम कुछ लोगों के मतानुसार लिया जाता है। सन् १४५८ ई. में जौनपुर के स्वतंत्र शासक के रूप में सुल्तान हुसेन शिर्की गद्दीनशीन हुए। उसी काल में दिल्ली के बादशाह बहलोल ने जौनपुर राज्य पर आक्रमण कर दिया, जिसमें शिर्की पराजित हुआ और इन्होंने बंगाल के राजा का आश्रय ग्रहण किया। इनके जीवन का अधिकांश भाग वहीं व्यतीत हुआ और सन् १४९९ ई. के लगभग बंगाल में ही इनकी मृत्यु हुई। सुल्तान हुसेन शिर्की अपने वंश के अंतिम राजा थे। संगीत से उन्हें विशेष प्रेम था। कुछ विद्वानों के मतानुसार ख्याल गायन पद्धति के प्रचार-प्रसार के लिए आप द्वारा किये गए प्रयास अत्यन्त सराहनीय है। कुछ विद्वानों के मत से राग-जौनपुरी के आविष्कारक ये ही माने जाते है।

मालवा नरेश बाजबहादुर इश्शासनकाल १५५४-१५६४ ई.ट एवं उनकी प्रिय पटरानी रानी रूपमती का संगीत प्रेम अनन्य था। एक किंवदन्ती के अनुसार राग भूपाली को अपने राज्य में लोकप्रिय बनाने में रानी रूपमती ने विशेष योगदान दिया और मालवा नरेश बाजबहादुर ने ख्याल गायकी को जनमानस में प्रचलित एवं लोग प्रिय बनाने में प्रशंसनीय योगदान एवं स्तुल्य प्रयास किया था। जिस प्रकार ध्रुपद गायन शैली में चार बानी प्रचलित है, उसी प्रकार ख्याल गायकी की एक शैली 'बादरवणी' बाजबहादुर के नाम पर पड़ी। इस संगीत-प्रेमी शाही दम्पति के अटूट-काव्य प्रेम एवं प्रतिभा तथआ रानी रूपमती के अतुलनीय रूप सौन्दर्य के कारण इन्हें दिल्लीपति सम्राट अकबर का कोपभाजन बनना पड़ा, जिसमें बाजबहादुर मारे गए और रानी रूपमती ने आत्महत्या कर ली।

हिन्दू कुल में उत्पन्न सहोदर भ्राता दिवाकर एवं सुधाकर का जन्म ग्राम खैराबाद में हुआ था। संगीत की शिश्रा प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा ने इन्हें इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए प्रेरित कया और इनका नाम सूरज खाँ, चाँद खाँ पड़ा। १६वीं शती के आस-पास के सुप्रसिद्ध कलाकारों में आप दोनों भाइयों की गणना थी। ख्याल गायकी को लोकप्रिय बनाने में विशिष्ट संगीतज्ञों में इन लोगों का नाम लिया जाता है। ख्याल गायन पद्धति में 'खैराबादी-भेद' उन्हीं लोगों की देन थी। अबुल फजल के 'आइने-अकबरी' में अकबरकालीन दरबार के प्रमुख संगीतज्ञों में ग्वालियर निवासी चाँद खाँ, सूरज खाँ (सरोदर गायक भ्राता) का भी स्पष्ट उल्लेख है।

उपर्युक्त सभी संगीतमर्मज्ञ विद्वानों का उल्लेख अनेक ग्रन्थकारों के प्रमाण के साथ ख्याल गायन पद्धति के प्रथम प्रयासकर्त्ता के रूप में किया है, किन्तु इस गायन शैली को इन लोगों के अथक प्रयासों के बावजूद वह अपार लोकप्रियता प्राप्त नहीं हुई, जो बादशाह मुहम्मदशाह 'रंगीले' (शासनकाल सन् १२३९-१७४८ ई.) के और उनके शिष्य तथआ जामाता फिरोज खाँ 'अदारंग' ने इस गायनशैली को दिलाई और शाही दरबार से लेकर जनसामान्य तक को इसका घोर प्रशंसक बना लिया और सीखने वालों में होड़ मच गई।

१. ध्रुपद एवं मानसिंह तोमर- ध्रुपद गायन शैली के जनक ग्वालियर नरेश महाराजा मानसिंह तोमर का शासनकाल सन् १४८६ई. से १५१८ई. तक रहा है और उनके पूर्व के काल तक छन्द-प्रबन्ध, धरू, महा-परमठा, जातिगान गायन शैली का ही वर्चस्व था। इस गायन-शैली को सुनते-सुनते एवं भाषा सम्बन्धी विलष्टता से जनमानस जब ऊब रहा था, उसी समय सुल्तान का शेख वहाउद्दीन जकरिया जनता की अभिरूचि को ध्यान में रखकर रागों को मिश्रण से रोज-रोज नई-नई धुनें बना रहा था और गुजरात का सुलतान हुसेन भारतीय रागों को इरानी स्वरूप में ढ़ाल रहा था, जिसे देखकर ग्वालियर-नरेश मानसिंह तोमर ने भारतीय संगीत की प्राचीन शास्त्रीयता एवं मर्यादा की रक्षा करने की भीष्म-प्रतिज्ञा के साथ एक नवीन गायन शैली आविष्कृत की और उसे ध्रुपद गायन शैली की संज्ञा प्रदान की। मानसिंह तोमर के दरबार में उस समय संगीताकाश के देदीप्यमान नक्षत्र बैजू बाबरा, चरज भगवान, धोन्दू, रामदास आदि विराजमान थे, जिनके सहयोग एवं सत्परामर्श से मानसिंह ने प्राकृत भाषा में 'मानकुतूहल' ग्रन्थ की रचना की जिसमें प्राचीन भारतीय रागों की विस्तृत व्याख्या की गई है। 'मानकुतूहल' ग्रन्थ का फारसी अनुवाद और गजेवकालीन प्रसिद्ध संगीत विद्वान फकीरूल्ला ने सन् १६७३ ई. में 'रागदर्पण' नाम से किया। फकीरूल्ला को भारतीय ईरानी एवं अन्य देशों में प्रचलित संगीत शैलियों के प्रति भी विशेष रूचि थीं और इन सभी शैलियों की तुलनात्मक विवेचना में उसे अपूर्व आनन्द मिलता था। हयातखवानी, शेख

© Copyright IGNCA, Sunil Jha
All rights reserved. No part of this may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

वाराणसी वैभव या काशी वैभव - सुनील कुमार झा

कमाल आदि संगीतकारों का वह आश्रयदाता था। 'मानकुतूहल' के फारसी अनुवाद 'राग-दर्पण' में फकीरूल्ला ने जहाँ-तहाँ अपनी व्यक्तिगत टिप्पणियाँ भई दी और यह विश्वास प्रकट किया है कि 'राग-दर्पण' ग्रन्थ के अध्ययन से भावी संगीत दर्पण आदि ग्रन्थों को देखने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

फकीरूल्ला औरंगजेब के अधीन कश्मीर का सूबेदार भी रहा, जिसकी लेखनी से यह स्पष्ट तथ्य प्रकट है कि औरंगजेब के शासनकाल में संगीत बहिष्कृत नहीं हुआ था। पुरूषनयन, सुखीसेन आदि संगीतज्ञ सम्राट औरंगजेब के विशेष कृपापात्रों में से थे, जिनके साथ अनेक गायक-वादक भी दरबार में थे, जिनका वर्णन फकीरूल्ला ने अपनी ग्रन्थ 'राग-दर्पण' में किया है।

भरतसंगीत को पुष्ट करने हेतु ग्वालियर नरेश मानसिंह तोमर ने एक बार नायक वख्शू, नायक पाण्डवीय, देव आहंग, नायक महमूद, नायक करण सरीखए संगीत विद्वानों की विद्वत् सभा आहूत की ओर इन विद्वानों की परिचर्चा वाद-विवाद, विचार-विमर्श से लाभ उठाते हुए 'मानकुतूहल' ग्रन्थ की रचना की। फकीरूल्ला ने अपनी कमाई का अर्जित धन संगीतज्ञों की सेवा में लगाया और लाखों रूपए व्यय करके राग-दर्पण को फारसी में अनूदित करवाया। महाराजा मानसिंह की संगीतसेवा से फकीरूल्ला विशेष प्रभावित हुआ और उन्हें 'ध्रुपद शैली का जन्मदाता' की संज्ञा देकर विशेष प्रशंसा की तथा 'मानकुतूहल' का फारसी अनुवाद राग-दर्पण के नाम से प्रकाशित करके मानसिंह तोमर की विशेष संगीत सेवा को चिरस्मरणीय बना दिया।

ग्वालियर-नरेश मानसिंह ग्वालियर से मात्र ११ किलोमीटर दूर स्थित राई ग्राम की एक गरीब गूजर कन्या के अद्भूत साहस एवं अनुपम सौन्दर्य से मुग्ध हो गया। जब आखेट पर निकले मानसिंह ने, गूजरी कन्या मृगनयनी को एक हाथ से जंगली भैंसे की सींग को मोड़ कर दूसरी ओर करते देखा तब उसके रूप, लावण्य, साहस एवं वीरता से मुग्ध मानसिंह ने उसे मामने विवाह का प्रस्ताव रखआ जिसे सुनकर मृगनयनी ने राई ग्राम से ग्वालियर स्थित महल तक पानी की एक नहर बनवाने की शर्त रखी, जिसे मानसिंह ने सहर्ष स्वीकार किया और मानमंदिर के निकट गूजरी महल का निर्माण कराया। विवाह के उपरान्त ग्वालियर के संगीतमय वातावरण ने रानी मृगनयनी को संगीत सीखने के लिए उन्मुख किया और मानसिंह दरबार के अनुपम संगीतरत्न बैजू-बावरा द्वारा रानी की विधिवत् संगीत शिक्षा प्रारम्भ हुई। गूजरी तोड़ी, मंगलगूजरी आदि रागों की रचना इसी रानी के नाम पर हुई। इब्राहिम लोदी की सेना के ग्वालियर आक्रमण गे दौरान सन् १५१९ई. मं मानसिंह की मृत्यु हुई और उनके पुत्र विक्रमादित्य तोमर ग्वालियर की गद्दी पर बैठे। भारतीय संगीत के इतिहास में ध्रुपद गायकी के जनक के रूप में मानसिंह तोमर का नाम अमर है।

इ स प्रकार १३वीं शताब्दी तक देश में प्राचीन छन्द, प्रबन्धक जातिमान आदि की पूर्ण विकसित परम्परा ही विद्यमान थी और इसके मूर्धन्य गायक के रूप में नायक गोपाल शीर्षस्थान पर विराजमान थे, जिनसे अमीर खुसरो जैसे प्रतिभावान भी प्रभावित हुआ और जिसने भारतीय संगीत की आधारशिला पर अनेक रागों की रचना ईरानी-परशियन मिश्रण से की। अमीर खुसरो ने अपने ७२ वर्षीय जीवनकाल में सन् १२७५ई. से १३२५ई. तक का समय राजाश्रय में ही बिताया। यही १२८९ई. में 'किरामुस्सादेन' काव्य की रचना की। जलालुद्दीन खिलजी ने खुसरो को 'अमीर' की उपाधि प्रदान की। अपने आध्यात्मिक गुरू निजामुद्दीन औलिया के प्रति खुसरो ने 'अपदल-उल-फावेद' में अपने हार्दिक उद्गारों को व्यक्त किया है। हिन्दू-मुसलमानों के आपसी भईचारा को प्रगाढ़ करने और भाषा सम्बन्धी व्यवधानों को दूर करने के उद्देश्य से 'खालिकबारी' की रचना की। खुसरो ने 'नूह-सिपेहर' कृति में आठवें प्रमाण में हिन्दुस्तान की श्रेष्ठता, नवें प्रमाण में भारतीय संगीत का पशउ-पक्षियों तक पर प्रभाव, दसवें प्रमाण में अपनी काव्यशक्ति की प्रशंसा में अपने भारतीय होने पर गर्व किया है। भारतीय संगीत, प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्याता तथआ भारत वर्ष के हिन्दु ब्राह्मण संगीतज्ञों की संगीत सेवाओं की अत्यधिक प्रशंसा अपनी कृतियों में करते हुए खुसरो ने भारतीय संगीत को विश्व के सर्वश्रेष्ठ संगीत की संज्ञा दी है और अपने आप को इन्हीं के शिष्यरूप में माना ही तथा भारतवर्ष को संसार का स्वर्ग माना है।

अकबर के शासनकाल को संगीत का स्वर्णयुग कहा जाता है, किन्तु उस काल के संगीतज्ञों की परिचय सूची में प्रसिद्ध इतिहासज्ञ अबुल फजल आदि किसी भी ग्रन्थकार ने 'तबला वाद्य' के किसी वादक के विषय में कुछ भी प्रकाश नहीं डाला है, जिससे यह सिद्ध होता हो, कि यदि उस काल तक इस वाद्य का निर्माण हो चुका था, तब भी विष्णुपद, ध्रुपद, वीणा,

© Copyright IGNCA, Sunil Jha
All rights reserved. No part of this may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

मृदंग आदि का ही उल्लेख है, जो उस काल में अत्यधिक लोकप्रिय और प्रचलित थे।

२. खयाल गायकी- अमीर खुसरो ने नायक गोपाल की परम्परागत भारतीय शैली को लोकरंजक स्वरूप प्रदान करने में अपनी चतुर्मुखी प्रतिभा का योगदान देकर उसमें कुछ मौलिक परिवर्तन किए। दक्षिण भारतीय शुद्धसप्तक प्रसिद्ध को प्रचारित कर लोकानुरंजन हेतु नवीन रागों की रचना की। संगीत के लिए प्रयुक्त साहित्य में जनभाषा का प्रयोग कर उसे जनप्रिय बनाया। दक्षिण के संगीतशास्त्रज्ञ नायक गोपाल भी उन दिनों दिल्ली में खउसरो के साथ ही रहते थे, उन्होंने खुसरो द्वारा प्रचरित नई मान्यताओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन कर दक्षिण भारतीय संगीत समान्वित एक नवीन शैली को जन्म दिया, जो आज 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति' के नाम से प्रसिद्ध है। कालान्तर में नायक गोपाल द्वारा प्रचारित पद्धति में परिमार्जन एवे परिवर्धन कर महान संगीतज्ञ सन्त स्वामी हरिदास (जन्म १५६९ई) ने अपने सुप्रसिद्ध शिष्यों, बैजू, गोपाललाल, मदनराय, रामदास, दिवाकर पण्डित, सौरसेन, सोमनाथ पण्डित एवं संगीत सम्राट तानसेन सरीखे गुणी गन्धर्वों के माध्यम से प्रचारित प्रसारित कर अतिशय लोकप्रिय बनाया।

ध्रुवपद, विष्णुपद आदि गायन शैली की प्रसिद्धि एवं लोकप्रियता अकबर तानसेन के पूर्व हुमायुँ शेरशाह सूरी झ्शासनकाल, १५३०-१५४०-१५४६ट मं भी अपने चरमोत्कर्ष पर थी, जिसमें बैजूबावरा सरीखे अकबर से लेकर मुहम्मदशाह रंगीले के समय सन् १५५६ से १७४८ई. तक के मध्य ध्रुपद विष्णुपद का ही गायन मुख्य रूप से प्रचलित था। साथ ही होरी-धमार गायन का प्रचलन शुरू हुआ। मुहम्मदशाह रंगीले के शासनकाल में नियामत खाँ उपनाम सदारंगवीनकार सिंहलगढ़ के राजपूत राजा समोखन सिंह मिश्री सिंह के वंशज थे, समोखन सिंह का मुस्लिम नाम बड़े नौबाद खाँ पड़ा। नियामत खआँ के द्वारा मुख्य रूप से खयाल गायकी का जन्म हुआ और आज यह गायनशैली चरमोत्कर्ष पर जन-जन में व्याप्त है।

सदारंग-अदारंग- मुहम्मदशाह रंगीले (शा.का. १७११-१७४८) दरबार के कलावन्त नियामत खआँ सदारंग तथा उनके जामाता फिरोज खाँ अदारंग के सहयोग से इस गायन-शैली का उद्भव हुआ। जिस प्रकार ध्रुपद गायन शैली में चार बानियाँ- क्रमशः खण्डहार, नौहार, गोबरहार एवं डागुर प्रसिद्ध हुईं, उसी प्रकार उत्तर में सदियों से खयाल गायन शैली और घरानों के विभिन्न स्वरूप अपनी-अपनी मौलिकता से एक दुसरे से अलग दिखाई पड़ते है। रागदारी एवं शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत आज प्रमुख स्थान खयाल गायकी का ही है।

खयाल गायकी के जनक नियामत खाँ, संगीत सम्राट तानसेन के पुत्री-वंश में दसवें व्यक्ति थे। आपके पिता का नाम लाल खाँ सानी और पितामह का खुशहाल खाँ था। श्री विष्णु नारायण भारतखण्डे कृत 'संगीत-पद्धति' (मराठी संस्करण) के चौथे भाग में सदारंग की वंश परम्परा दी गयी है। खयाल गायकी के लिये प्रथम प्रयास अमीर खुसरो ने सन् १२५१-१३२५ई. में किया, उसके पश्चात् जौनपुर के शासक सुलतान हुसैन शिर्की, बाजबहादुर, चंचल सेन, चाँद खाँ, सूरज खाँ आदि ने इस गायकी का मार्ग प्रशस्त करने का सत्प्रयास अपने समय में अपने स्तर से किया, किन्तु कोई विशेष लोकप्रियता इस गायकी को नहीं मिल पायी। विभिन्न गायन शैलियों के साथ यह भी सूचीबद्ध हो गई। नियामत खाँ ने इस पर गहराई तक सोचा और निष्कर्ष निकाला कि जब तक खयाल की बंदिशों में बादशाह सलामत का नाम नहीं डाला जायेगा और उन बन्दिशों में बादशाह की प्रशंसा की झलक नहीं मिलेगी, तब तक यह गायन पद्धति सर्वसाधारण में प्रचलित एवं लोकप्रिय नहीं होगी। पूर्व के संगीत नायक अपनी रचनाओं में मात्र अपने नायक उल्लेख करते थे जिससे बादशाह उनकी बंदिशों में कोई विशेष दिलचस्पी नहीं रखते थे। नियामत खाँ ने अपनी बंदिशों में अपने नाम के साथ बादशाह का नाम 'सदारंगीले-मुहम्मदशाह' देना शुरू किया, जिससे बादशाह ने उन बंदिशों पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए अपना दृष्टिकोण प्रशंसात्मक रखा और देखते ही देखते यह गायनशैली सभी को आकर्षित करती हूई क्रमशः अत्यधिक लोकप्रिय होती गयी और दरबार में नियामत खाँ का ओहदा और सम्मान बढ़ता गया।

'सदारंग' की बंदिशों में मुख्य रूप से श्रंगार रस समन्वित साहित्य एवं बादशाह के प्रति चाटुकारिता ही पायी जाती है, जिससे दरबार में इस शैली लोकप्रियता बढ़ती ही गयी, जिसे देख दरबार के अन्य घरानेदार ध्रुपद गायकों को यह बात खटकने लगी। उन लोगों ने सामूहिक रूप से इस शैली को शास्त्रीयता की दृष्टि से अपमानजनक और जनाना संगीत की

© Copyright IGNCA, Sunil Jha
All rights reserved. No part of this may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

संज्ञा दी, क्योंकि दरबार में नाचने गाने वाली नर्तकियों के बीच भी यह शैली लोकप्रिय हो चुकी थी और सभी बादशाह की रूचि अपनी ओर मोड़ने के लिये इस शैली पर लट्टु थीं। उन सभी ने अन्य दरबारी संगीतज्ञों के उकसाने पर बादशाह से 'सदारंग' से संगीत सीखने की इच्छा प्रकट की। नियामत खाँ अब चतुर हो चुके थे। उन्होंने इस षड्यंत्र को भाँप लिया और बादशाह के क्रोध से बचने एवं अपनी वंश मर्यादा को अक्षुष्ण रखने की एक युक्ति खोज निकाली तथा बादशाह से कहा, कि 'मेरा एक सुयोग्य शिष्य हसनघाटी औरतों की शिक्षा देने में विशेष दक्ष है, साथ ही उसकी आवाज भी स्त्रियोचित एवं पतली है।' बादशाह उनसे सहमत हुये और नियामत खाँ ने इस झंझट से अपने को मुक्त कराया।

नियामत खाँ ने स्वयं न तो कभी खयाल गाया और न तो अपने वंशजों को ही इसे सिखाया। उन्हें ध्रुपद गायकी एवं वीणा-वादन में ही पारंगत किया, किन्तु दरबारी गायिकाओं, ढ़ाढ़ी निवासियों को विशिष्ट सिक्षा देकर खयाल गायकी में सुदक्ष बनाया और प्रचारित कर अतिशय लोकप्रिय बनाया। जो गायकी अपनी प्रारंभिक अवस्था में निम्नस्तरीय, अपमानजनक समझी जाती थी, वही शनैः-शनैः विकसित होते हुये वर्तमान में लोकप्रियता के उच्चतम शिखर पर विद्यमान है। सदारंग की अनेक बन्दिशों में अदारंग का भी नाम आता है। कुछ इतिहासज्ञों के अनुसार इनके दो पुत्र- फिरोज खाँ 'अदारंग' और भूपत खाँ 'महारंग' थे। संगीत जगत् में अपने पिता के साथ इनके नाम भी अमर हो गये।

मुगल-शासकों के क्रमशः पतन के बाद उस दरबार से जुड़े संगीतज्ञों ने भी दिल्ली को अन्तिम सलाम किया और देश के अन्य संगीतसुधी गुणग्राही राजा, नवाबों की रियासतों की ओर चल पड़े, वहाँ के शासकों ने इन कलावन्तों का हृदय से स्वागत करते हुए राजाश्रय प्रदान किया, जिनकी छत्रछाया में भारतीय संगीत की खयाल शैली क्रमशः उचित पोषण पाकर पुष्पित-पल्लवित होती गयी और जनसामान्य में जनप्रिय हुई। विभिन्न रियासतों की उदारता एवं सहायता से विकसित खयाल गायकी के अनेक घराने उन्हीं के नाम पर ग्वालियर, आगरा, दिल्ली, पटियाला, लखनऊ, जयपुर, बनारस, रामपुर, किराना इत्यादि घरानों के नाम से प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित हुए। इन्हीं प्रमुख घरानों में से ही किसी घराने से जुड़े होने के बावजूद कतिपय प्रसिद्ध गायकों ने अपनी गायकी की नवीन, स्वतंत्र शैली विकसित कर इन्दौर, सहसवान, मेवाती आदि घरानों की आधारशिला रखी।

संगीतकला के दो प्रमुख पक्ष स्वर तथा लय है। इन्ही दो प्रमुख स्तंभों पर ही संगीत की पूरी इमारत निर्मित हुई है। सूक्ष्म दृष्टि डालने पर यह तथ्य प्रकट होता है, कि स्वर एवं लय इन्हीं दो के बीच भिन्न-भिन्न शैली से एक विभाजन रेखआ खींचकर हर घरानों ने अपनी मौलिकता एवं स्वतंत्र अस्तित्व अक्षुण्ण बनाये रखआ है। किसी घराने ने स्वर को प्राथमिकता दी, लय को गौण कर दिया, किसी घराने ने स्वर-लय दोनों को समान आदर दिया, किसी घराने ने लय की प्रधानता के साथ स्वर को विशिष्टता प्रदान की। सारांश यह कि कंठ संगीत के शारीरिक अंग उपांगों के रूप में आलाप, स्वर-संयोजन, मींड़, गमक, मुर्की, खनक सू, सरगम, पलटा बंदिशों के प्रभावशाली प्रस्तुतीकरण की विशिष्ट शैली, लय प्रधान गायकी, अप्रचलित, मिश्रित, अर्धामिश्रित रागों के प्रस्तुतीकरण में सुदक्षता, तानों के विभिन्न प्रकारों पर अधिकार, बंदिश के बालों, मुखडा के साथ नवीन ढंग से सम पर आने पर ढंग इत्यादि विभिन्न अवयवों पर प्रवीणता अपनाकर प्रत्येक घराने ने अपने को दूसरे से अलग बना रखा हैं, जि विभिन्न नामों और घराने के रूप में जाने जाते है।

उपर्युक्त सभी प्रमुख घरानों में मात्र 'बनारस घराना' ही अपवाद स्वरूप है, जिसने छन्द-प्रबन्ध, विष्णुपद, ध्रुपद धमार होरी की प्राचीन गायकी के साथ बाद में विकसित खयाल, टप्पा, पट-खयाल, ठुमरी, तराना, दादरा, गजल, भजन तक की लोकप्रिय गायकी को साधिकार गाने में विशिष्टता प्राप्त की और अपने में आत्मसात कर अफना बना लिया। यही नहीं, लोकसंगीत की मिठास में रची-पगी चैती, होली, काली, घाटो, बारहमासा आदि की लोकरंजन शैली को शास्त्रीय संगीत की परिधि में प्रतिष्ठित कर लोकप्रिय बनाया। समस्त विश्व में संगीत प्रेमियों के मानस पटल पर भारतीय संगीत ने अमिट छाप छोड़ी है, जिसमें सदियों से काशी के कलाकारों की एक अटूट श्रंखला अपना विशिष्ट योगदान देती चली आ रही है, जिनकी कला साधना के वैशिष्ट्य लोकप्रियता को किसी लेखनी के प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। उनकी विश्वविश्रुत ख्यात स्वयं ही इसका प्रमाण है।

© Copyright IGNCA, Sunil Jha
All rights reserved. No part of this may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

३. टप्पा-गायकी एवं शोरी मियाँ- पंजाब, बंगाल, राजस्थान, गुजरात आदि प्रान्तों में ऊँटहारों के समूह में उन्हीं की भाषा में श्रृंगारयुक्त प्रेमगीतों को लोकधुनों में गाने का प्रचलन सदियों से थआ। इन प्रेमगीतों के माध्यम से ये ऊँटहारों के समूह रास्ते की भयंकरता, सन्नाटापन, मार्ग को उबाऊपन और थकान को दूर कर अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाते थे। मीलों लम्बे विस्तृत नरवलिस्तानों, रेगिस्तानी इलाकों में जमीन की दूरी का पैमाना एक टप्पा जमीन के रूप में प्रचलित था। इन ऊँटहारों के प्रेमगीतों में प्रदर्शित गले की विशिष्टयुक्त लोगधुनों की रसमाधुरी ने शोरी मियाँ को विशेष प्रभावित किया और उन्हें नवीन शैली सृजित करने की प्रेरणा प्रदान की जो टप्पा गायकी के रूप में विकसित हुई।

गुलाम नबी उपनाम शोरी मियाँ का जन्म पंजाब प्रान्त के ढंगसियाल ग्राम में वहाँ के ग्रामवासियों के अनुसार हुआ था। गुलामनबी की स्त्रियोचित पतली आवाज के कारण उनके पिता लखनऊ नवाब के दरबारी गायक गुलाम रसू खआँ ने उन्हें पुरूषोचित गायकी की शिक्षा नहीं दी, किन्तु कालान्तर में गुलामनबी ने अपनी संस्कारगत विलक्षण संगीत प्रतिभा एवं साधना से पंजाबी भाषा का अध्ययन किया और ऊँटहारों के मध्य प्रचलित अद्‌भुत हृदयस्पर्शी लोक-धुनों के आधार पर एक नवीन गायनशैली टप्पा को जन्म दिया और पंजाबी भाषा में ही असंख्य श्रंगार एवं विरहयुक्त गीतों की रचना अनेक रागों में की तथा इन बंदिशों में उपनाम शोरी को जोड़ा। शोरी मियाँ निःसन्तान थे, फलस्वरूप आप द्वारा आविष्कृत टप्पागायकी को लोकप्रिय बनाने का एकमात्र श्रेय आपके निष्णात पटु शिष्य गामू खाँ को है, जिन्होंने इस उत्कृष्ट गायकी की शिक्षा अपने पुत्र शादी खाँ को दी। पिता एवं पुत्र दोनें ही एक लम्बे अरसे तक काशी में रहे। उस समय काशी नरेश महाराजा उदितनारायण सिंह सिंहासनारूढ़ थे, जिनके शासनकाल में शादी खाँ दरबारी कलावन्त के रूप में प्रतिष्ठित थे। टप्पा गायकी की इस अभिनव शैली से संगीत-नगरी काशी अभिभूत हुई और इस विशिष्ट गायकी को अपने में आत्मसात् करतेहुए शादी खाँ से टप्पे की भरपूर शिक्षा लेकर बनारस की सुप्रसिद्ध गायिका चित्रा, इमानबाँदी ने इस गायकी में उद्‌भुत वर्चस्व एवं प्रसिद्धि प्राप्त की, जिनकी विलक्षण टप्पागायकी ने पूरी काशी में धूम मचा दी। इन्हीं सुप्रसिद्ध इमाम बाँदी के पुत्र रमजान खाँ एवं शिष्य नगेन्द्रनाथ भट्‌टाचार्य द्वारा टप्पा गायकी १९वीं शती के उत्तरार्द्ध में बंगाल में पहुँची, एवं लोकप्रिय तथा प्रसिद्ध हुई।

काशी के सुविख्यात गुणी गन्धर्वबन्धु प्रसिद्ध-मनोहर जी, जब अयोध्या के नवाब सादत अली के दरबारी गायक नियुक्त हुए, तो सौभाग्य से उन्हीं दिनों आप दोनों भाइयों का परिचय शोरी मियाँ से हुआ। दोनों ही एक दूसरे की विद्वता से प्रभावित हुए, निःसंकोच गायन शैली का आपसी आदान-प्रदान हुआ और लगातार सात वर्षों के साथ से इन दोनों भाइयों ने टप्पा गायकी में पहारत प्राप्त की और वर्चस्व स्थापित किया। शोरी मियाँ ने अपनी विलक्षण श्रुतिमधुर टप्पा गायकी से कई बार लोग मंत्रमुग्ध कर अतिशय प्रशंसा प्राप्त की। नवाब से भी विशेष धन राशि प्राप्त की जो फकीरों में बाँट दिया। यह घटना आपकी सादगी, सरलता, उदरता एवं शाही फकीरी स्वभाव का द्योतक है। शोरी मियाँ जैसे उत्कृष्ट एवं लोकप्रिय गायक १९वीं शती के पूर्वार्द्ध में लखनऊ में ही देहान्त हुआ था।

४. टपखयाल एवं इनायत हुसेन खाँ- यह गायन शैली मुख्यतः टप्पा एवं खयाल दोनों ही गायन शैलियों का उत्कृष्ट मिश्रणयुक्त एक नवीन गायन शैली रही है। इसके जनक नेपाल दरबार के विद्वान गायक उस्ताद इनायत हुसेन खाँ थे। आपका जन्म १८४९ई. में लखनऊ निवासी आपके नाना फतबुद्यौला के यहाँ हुआ था, जो नवाब वाजिद अली शाह के सलाहकार एवं वजीर थे। आपके पिता का नाम महबूब खाँ था। बाल्यावस्था से ही आप संगीत की शिक्षा रामपुर में तानसेन के वंशज- बहादुर खाँ से प्राप्त किया। सन् १९१९ में आप दिवंगत हुए।

आप ध्रुपद, धमार, खयाल, ठुमरी, टप्पा सभी शैलियों पर समान अधइकार रखते थे। आपने अपनी रचनाओं में 'इनायतपिया' अथवा 'इनाममियाँ' नाम दिया है। आपकी विशिष्ट गायकी को लोकप्रिय बनाने में आपके प्रमुख शिष्यों में फिदा हुसेन खाँ (बड़ौदा), मुश्ताक हसेन खाँ (रामपुर), हफीज खाँ (गुड़ियानी मैसूर), अमान अली खाँ (पूना), ग्वालियर नरेश के भ्राता गनपत राव 'भैया साहब' सरीखे संगीतज्ञों ने अपना विशेष एवं अपूर्व योगदान दिया है।

© Copyright IGNCA, Sunil Jha
All rights reserved. No part of this may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

५. ठुमरी गायन शैली- इस गायन शैली की उत्पत्ति, विकास एवं शैलियों की प्रचलित विविधता पर विचार करने के लिए संगीत का आधारग्रन्थ 'नाट्यवेद' की पृष्ठभूमि ही सर्वथा उचित एवं प्रमाणिक है। नाट्यवेद में हमें क्रमशः नाट्य(वाक्यार्थ अभिनयात्मक), नृत्त (ताल लयात्मक), एवं नृत्य (गायन, वादन, नर्तन सम्पृक्त अभिनयात्मक) पक्ष की जानकारी मिलती है। नृत्य-पक्ष की दो शाखा-ताण्डव (पुरूषोचित), एवं लास्य (ललित-सुकुमार स्त्रियोचित) नृत्य से हल्लीसक-रास नृत्य की उत्पत्ति मान्य हुई। हालांकि रास नृत्य भी आगे चलकर दो भागों क्रमशः संगीतप्रधानरासक (लोक संगीत), काव्य प्रधानरासक (अपभ्रंश अथवा डिंगल साहित्य), में बँट गया। नाट्यरासक से चर्चरी का प्रादुर्भाव एवं चर्चरी से क्रमशः काव्य प्रधान चर्चरी (अपभ्रंश एवं डिंगल साहित्य) तथा संगीत प्रधान चर्चरी (लोक संगीत) का विकास हुआ। संगीत प्रधान चर्चरी आगे चलकर क्रमशः धम्माली एवं चाँचरि (लोक संगीत) में विभाजित हुई। धम्माली से क्रमशः धमाल-धमार, धमाली-धुमाली (लोक संगीत), तथा धमार होरी (ध्रुपद अंग) और चाँचरि शैली से क्रमशः होली (लोक संगीत), एवं ठुमरी (ब्रज शैली), विकसित हुई। आगे चलकर ठुमरी (ब्रज शैली) भी दो भागों क्रमशः बोल बाँट की ठुमरी एवं बोलबनाव की ठुमरी शैली के रूप में विकसित होती गई। बोलबनाव ठुमरी शैली ने कालान्तर में- पूरब अंग, पंजाब अंग का व्यक्तित्व ग्रहण किया, जिसमें लखनऊ शैली (पंजाब अंग मिश्रित), एवं बनारसी शैली ने अपनी अलग पहचान बनाई है।

इ स प्रकार नाट्यवेद के आधार पर काल क्रमानुसार प्राप्त नाट्य, नृत्त, नत्य की आधारशिला पर समयानुकूल परिवर्तित बनती-बिगड़ती हुई, अनेक नवीन नामों को धारण करती हुई अन्त में एक मनमोहक, चित्राकर्षक, अत्यन्त हृदयस्पर्शी गायन शैली 'ठुमकी' के रूप में आज भारतीय शास्त्रीय संगीत का अभिन्न अंग बनकर संगीत प्रेमियों में अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त कर चुकी है, जिसके दो-तीन सदी पूर्व के इतिहास के अवलोकन में अनेक रससिद्ध ठुमरी गायकों भक्तिकाल, पुष्टमार्गीयकाल के रसज्ञ सिद्ध सन्त, भक्त, कवि एवं रचनाकार तथा नर्तक कलाकारों का विशिष्ट योगदान रहा है।

© Copyright IGNCA, Sunil Jha
All rights reserved. No part of this may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.